

१९वाँ कलश है। १८ हो गये हैं, अठारह। १९वाँ

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।

निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुधः ॥१९॥

कहते हैं कि यह भगवान आत्मा आनन्द और शुद्धस्वरूप है, उसकी भावना करनेवाले को क्या करना? भावना अर्थात् आत्मा पवित्र अनन्त गुण के स्वभावरूप पवित्र धाम है। उसके सन्मुख की एकाग्रता करने से मोक्षमार्ग / धर्म प्रगट होता है और उसके फलरूप से मोक्ष होता है; तो इसे वह एकाग्रता किस प्रकार करनी? ऐसा कहते हैं।

**परिग्रह का ग्रहण छोड़कर....** जगत की चीजें विकल्प से लेकर सब ही छोड़कर, छोड़कर अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़कर। यहाँ तो कहना है कि मुनि को जो बाह्य परिग्रह है, वह सब छोड़कर। अन्तिम एक शरीर रहा तो शरीर के प्रति उपेक्षा करके... मोक्ष का मार्ग है न? कैसे प्रगट हो? शरीर के प्रति उपेक्षा... और सर्व जगत के परिग्रह का, उसके प्रति के विकल्प की ममता का त्याग, वह पर का त्याग कहलाता है।

**बुध पुरुष को....** ज्ञानी पुरुष को-धर्मी पुरुष को, जिसे आत्मा का हित करना है उसे, अव्यग्रता से ( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र... भगवान आत्मा अस्तिरूप से (ऐसा है, ऐसा कहा)। पहली तो नास्ति कही। परिग्रह का त्याग करके, शरीर की उपेक्षा, परन्तु यह आत्मा चीज़ क्या है? ( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... लो, शरीर आया। कृत्वोपेक्षां च विग्रहे। निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं सामने-सामने लिया है। यह शरीर तो मिट्टी-जड़ है। इसकी उपेक्षा करना। यह कोई अपनी चीज़ नहीं है। उपेक्षा अर्थात् इसका आदर नहीं करना और ( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... चैतन्यमात्र शरीर - ऐसा कहते हैं। आत्मा में

अनाकुल आनन्द से भरा हुआ चैतन्य है। आहा..हा.. !

( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... चैतन्यमात्र जिसका शरीर। ( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,... आनन्द और ज्ञान दो अर्थ लिये हैं। भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि अनाकुलता का चैतन्यस्वरूप भरा हुआ - आनन्द और चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ आत्मा। आहा..हा.. ! उसे ( आत्मा को ) भाना चाहिए। धर्मी जीव को उसे अनुभव करना। भगवान आत्मा, शरीर आदि परिग्रह से रहित, बाह्य परिग्रह स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी आदि से तो रहित है, परन्तु वह निराकुलता के आनन्दस्वरूप से भरपूर चैतन्यतत्त्व है। आहा..हा.. ! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है और अकेला चैतन्यभाव है। वह जिसका शरीर अर्थात् स्वरूप है, उस आत्मा को—ऐसे आत्मा को; वह आत्मा अर्थात् ऐसा आत्मा। है न ? उसे ( आत्मा को ) भाना चाहिए। ऐसे आत्मा को भाना। आहा..हा.. ! बहुत संक्षिप्त में बहुत बातें। सूक्ष्म बहुत। जगत को अभ्यास नहीं होता।

भगवान परमेश्वर कहते हैं कि भाई! यदि तुझे आत्मा का कल्याण करना हो, अर्थात् धर्म करना हो तो कैसे करना और कैसे हो ? कि आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीजें—यह शरीर, वाणी, मन, यह स्त्री-पुत्र-कुटुम्ब के प्रति लक्ष्य छोड़ दे; ये कोई तेरी अस्ति में नहीं है, तेरी सत्ता में ये चीजें नहीं हैं। इसलिए तेरे अस्तित्व में ये नहीं हैं, इनका लक्ष्य छोड़ दे और तेरे अस्तित्व में अनाकुल और ज्ञान से भरपूर चैतन्य वस्तु है, उसमें दृष्टि दे, उसमें एकाग्र हो, उसका अनुभव कर। लो, पोपटभाई! यह धर्म। गजब धर्म, भाई! इसमें चौविहार ( रात्रि में चौविध आहार-त्याग ) करना, कन्दमूल न खाना, यह करना - यह बात तो आती नहीं। पण्डितजी!

**मुमुक्षु :** सब ही निकाल दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वह तो परचीज है। खा सके कहाँ से वहाँ ? वह तो परचीज है, यह तो कहा। पर से लक्ष्य छोड़ दे, उसका आग्रह छोड़ दे, ऐसा कहा न ? परिग्रह का ग्रहण छोड़कर... आग्रह अर्थात् ग्रहण। गजब बात। व्यापार-धन्धा, कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र—ये सब चीजें तो पर हैं; ये कोई तेरी नहीं है, तुझमें नहीं है; तू उनमें नहीं है। अब तू जहाँ है, वहाँ तो अनाकुल आनन्द और चैतन्यरस से भरपूर आत्मा है। आहा..हा.. ! उसे ( आत्मा को ) भाना चाहिए। है न पाठ में ? भाव एक लिया। आहा..हा.. ! बहुत संक्षिप्त।

यह भावना अर्थात् मोक्षमार्ग की एकाग्रता। स्वभाव-सन्मुख, चैतन्य आनन्दस्वरूप के सन्मुखता की एकाग्रता का नाम भावना है। इसका नाम चैतन्य के मोक्षमार्ग की दशा, इसका नाम धर्म है।

**मुमुक्षु :** अभी कहाँ दिखता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं दिखता - यह निर्णय किसने किया ? नहीं दिखता - यह किसकी सत्ता में निर्णय हुआ ? वह ही आत्मा है। जैसे कि मैं दिखता नहीं, इसका अर्थ ही मैं यह हूँ, ऐसा अर्थ हो गया। कभी विचार किया नहीं न! दिखता है क्या ? ज्ञान ही दिखता है जहाँ हो वहाँ। वह चीज़ नहीं दिखती। चीज़ तो जड़ है, पर है। उसे जाननेवाला ज्ञान ही जहाँ हो वहाँ जानता है। यह जाननेवाला ज्ञान, वह आत्मा है, यह तो यहाँ कहते हैं। मूल इस तरह का अभ्यास नहीं है। यह सब कमाने का और खाने-पीने का और हैरान करने के रास्ते (मार्ग) में पूरी जिन्दगी व्यतीत करता है।

**मुमुक्षु :** खाने-पीने में कम साहेब! कमाने में ही अधिक। ऐसी अलौकिक बात इस प्रकार से समझ में नहीं आती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझ में नहीं आती। ठीक कहते हैं। अब ये तो निवृत्त हुए हैं। सब लड़के करते हैं और पैसे बहुत हैं; इसलिए अब तो निवृत्ति लेकर यह करना।

**मुमुक्षु :** प्रत्येक समय में प्रभु ज्ञान का ही अनुभव करता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही करता है। यह शरीर है, वह यह है - ऐसा किसकी सत्ता में ज्ञात हुआ ? किसकी मौजूदगी में ज्ञात हुआ कि यह शरीर है, यह स्त्री है, यह परिवार है, यह धन्धा है। वे हैं भले, परन्तु वह किसकी सत्ता में ज्ञात हुआ ? चैतन्य की सत्ता में ज्ञात हुआ, उस चैतन्य की सत्ता में वे चीज़ें नहीं हैं। उनके सम्बन्धी का अपना जो ज्ञान जानता है, वह ज्ञान इसकी सत्ता में है, परन्तु लोग अन्तर के आत्मा के विचार पर (नहीं आते)। अकेली जगत की मजदूरी (किया करते हैं)। यह सब मजदूरी है ? ऐई! मजदूरी है ? मल्लूचन्दभाई! कैसे होगा ? परन्तु तुम्हारे कहाँ पैसे इकट्ठे हुए कि तुम...

**मुमुक्षु :** थोड़े तो थोड़े, परन्तु मजदूरी तो हमने की है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक बार पूनमभाई कहते थे। खबर है ? एक बार अहमदाबाद

गये थे। उन्हें कहाँ पैसे की... क्या भाषा कुछ थी। ऐसा कुछ था। इन्हें कहाँ पैसा... और स्वाद लिया? ऐसी कुछ भाषा थी। मल्लूचन्दभाई को याद नहीं। कहा था। मुझे ख्याल है। बैठे थे और कहा था। ऐसा कहे कि पैसे कहाँ इन्होंने प्राप्त किये हैं कि उनके रस की और उसकी क्या चीज़ है, उसकी खबर पड़े। ऐसा एक था। उसके पिता को उड़ाया तब।

**मुमुक्षु :** वह तो अनादि का उड़ाया है। बाप था ही कब ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी भाषा थी परन्तु बराबर याद नहीं। अहमदाबाद में कहा था। ऐसा कहे कि उसे पैसे ज्यादा हो तो खबर पड़े न कि इसमें कैसे प्राप्त किये जाते हैं और कैसे होता है? उस प्रकार का रस ही उसने खड़ा नहीं किया। वहाँ था ही नहीं।

**मुमुक्षु :** गोपालभाई के मकान में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गोपालभाई के बँगले में।

**मुमुक्षु :** था ऐसा आ गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो होवे वह आवे, दूसरा उसमें क्या आवे? ऐसा उसने कहा था। ऐसा कि बापू ने कहाँ वहाँ इतने अधिक पैसे, करोड़-दो करोड़ लो न... ऐसा कहे क्या लाख, दो लाख, चार-पाँच लाख। उसके पिता के पास उतने ही कहाँ थे। उनके पास तीस-चालीस हजार थे। उन छोटा भाई के पास। वह और लाखोंपति, वह और करोड़पति। धूल में भी कुछ नहीं। ऐसा कि उन्होंने कहाँ उस पैसे का रस... बराबर शब्द रचा था। उन्होंने कहाँ पैसे देखे हैं कि उनका रस हो। ऐ... भीखाभाई! गजब भाई! संसार तो कालाकेर है न?

यहाँ कहते हैं... आहा..हा..! यह है.. यह है... यह है.. यह है.. यह किस भूमिका में ज्ञात होता है? जो भूमिका ज्ञान की है, उसमें यह ज्ञात होता है। यह शरीर है, यह धन्धा चलता है, ये पैसे आये-गये। इसमें आये-गये नहीं, यह जानता है। यदि यह जाननेवाला मुख्य न हो तो यह चीज़ है, यह राग हुआ, यह द्वेष हुआ, यह हुआ वह किसने जाना? उस जाननेवाले की भूमिका में जो ज्ञात होता है, वह ज्ञान ज्ञात होता है। वह चीज़ (परचीज़) नहीं। समझ में आया? उस ज्ञान का धारक वह भगवान आत्मा है। कहो, क्या है? ए... लालचन्दभाई! इन भाई ने क्या पूछा?

**मुमुक्षु :** दिखता नहीं, ऐसा कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पूछने में तो ऐसा आवे। एक लड़का नहीं था? अपने जामनगर में 'पेश' है। अभी तो अब १५-१६ वर्ष हो गये परन्तु तब सात वर्ष का था। नौ वर्ष पहले की बात है। उसके घर में यह चर्चा बहुत चले। त्रम्बकभाई उसके पिता होते हैं? काका होते हैं, परन्तु उन सबके घर में चर्चा बहुत चलती है। जयसुखभाई तो अभी आये। ये तो सामने नहीं देखते थे। एक बार सुना, फिर समझने पर... ओय माँ! यह बात तो दूसरी चले। हमारे घर में चले परन्तु कभी ध्यान ही नहीं दिया। जयसुख बड़ा वकील है। यहाँ बहुत बार आता है।

वह लड़का एक बार चर्चा करते-करते चर्चा में खड़ा हो गया। लालचन्दभाई! उसका प्रश्न सुनना। महाराज! तुम आत्मा देखो-देखो करते हो.... ऐसा प्रश्न किया, हों! कहाँ देखना हमारे? ऐसे तो यह दिखता है-आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है - ऐसा लड़का बोला। सात वर्ष की उम्र, हों! अभी तो १५-१६ वर्ष हो गये। हमें आत्मा को कहाँ देखना? यह सब दिखता है। खड़ा होकर (बोला), हों! रात्रि-चर्चा के समय (बोला)। यह दिखता है - आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। भाई! बापू! यह अन्धेरा किसमें दिखता है? अन्धेरा, अन्धेरे में दिखता है? अन्धेरा जिसकी सत्ता में दिखता है, वह चैतन्यमूर्ति आत्मा है। लालचन्दभाई! सात वर्ष का बालक, हों! बहुत होशियार है। अभी तो बहुत सूक्ष्म प्रश्न करता है।

अन्धेरा किसमें ज्ञात होता है? भाई! यह अन्धेरा है। इस अन्धेरे का अस्तित्व अन्धेरे में ज्ञात होता है? इस अन्धेरे का जाननेवाला चैतन्यमूर्ति, वह ऐसा कहे कि यह अन्धेरा है। मैं अन्धेरा नहीं, मैं तो अन्धेरे का जाननेवाला हूँ। यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! सादी भाषा है, बहुत अटपटी नहीं है, परन्तु कभी उसके सन्मुख देखा न हो, स्वीकार नहीं किया हो, लो! कोर्ट में नया व्यक्ति चढ़े। किसे कितने पैसे दिये जाते होंगे, किसे पान-बान खिलाना क्या देना? रिपोर्ट करता है कि क्या लिखे? रिपोर्ट लिखावे तब काँपे। प्रार्थना-पत्र किससे लिखवाना? सामने बैठा होगा या अन्दर बैठा होगा? उलझन में आवे। किसान नया पहली-पहली बार आया हो, परन्तु जिसने बहुत बार सीढ़ियाँ तोड़ी हों, उसे खबर होती है कि सामने कारकून बैठा हो, उससे लिखाया जाता है। उसे आठ आने दूँगा, लिख

दे। इसी प्रकार इस नये विद्यार्थी को कुछ सुना नहीं हो और चढ़ा हो उसे ऐसा लगता है कि ये क्या कहते हैं? ऐई पोपटभाई! भाई! आहा..हा..! यह सब क्रीड़ाँ जगत की क्रीड़ाँ और होती है। उसे किसमें ज्ञात होती है? वह चैतन्य में ज्ञात होती है। कहा न?

**चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,...** यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है। ज्ञान के तेज-नूर, ज्ञान के नूर के प्रकाश का पूर है। खबर नहीं, कभी विचार किया नहीं। निज घर में कौन है? पर घर की सब लगायी है। समझ में आया? आहा..हा..! 'घर का लड़का चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा' अपने लोगों में नहीं कहा जाता? स्त्री कहती है कि परन्तु इस घर में आटा नहीं और तुमने पर की लगायी है। उसे आटा देना, परन्तु यहाँ घर में नहीं, उसका क्या करना? ऐसी सब पर की लगायी परन्तु तू कौन है? उसकी खबर नहीं है। आहा..हा..! भगवान! तू तो प्रत्यक्ष है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। क्यों? कि प्रत्यक्ष अर्थात् जानने की भूमिका में तेरा स्वरूप और पर क्या है, वह जाननेवाला तो प्रत्यक्ष इस जगत में है। यह तो सब चीजें बाह्य पर हैं। बाह्य पर हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि ( निराकुलता से ) भरा हुआ, चैतन्यमात्र जिसका शरीर है,.... आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव और अनाकुलस्वभाव। स्वभाव में आकुलता नहीं होती। आकुलता तो विकल्प और दुःखरूप है। वह दूसरी भिन्न चीज़ है। निराकुल भगवान ज्ञानस्वरूप है। निराकुल, जाननेवाला-जाननेवाला, उसमें आकुलता कहाँ से आयी? ऐसा जाननेवाला और निराकुलस्वरूप ऐसा आत्मा है। वह आत्मा, उस आत्मा को देखना, उस आत्मा पर नजर करना और उस आत्मा में एकाग्र होने का नाम धर्म है। समझ में आया? यह १९ वाँ कलश कहा।

### श्लोक-२०

( शार्दूलविक्रीडित )

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्,  
द्वेषाम्भःपरिपूर्ण-मानसघटप्रध्वन्सनात् पावनम् ।  
ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं,  
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मङ्गलम् ॥२०॥

( वीरछन्द )

शुभ अरु अशुभ राग क्षय करने तथा मोह क्षय करने से ।  
द्वेषरूप जल पूरित मन-घट को समूल क्षय करने से ॥  
नित्य उदित निरुपधि सर्वोत्तम प्रगटे ज्ञान प्रकाश पवित्र ।  
भेदज्ञान-तरु का सत् फल है, वन्द्य जगत को मंगल नित्य ॥२० ॥

श्लोकार्थ :- मोह को निर्मूल करने से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से, तथा द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से, पवित्र, अनुत्तम<sup>१</sup>, निरुपधि<sup>२</sup> और नित्य-उदित ( सदा प्रकाशमान ), ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है । भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल<sup>३</sup>, वन्द्य है; जगत को मंगलरूप है ॥२० ॥

कलश-२० पर प्रवचन

२० वाँ कलश ।

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्,  
द्वेषाम्भःपरिपूर्ण-मानसघटप्रध्वन्सनात् पावनम् ।

१. अनुत्तम=जिससे अन्य कोई उत्तम नहीं है, ऐसी सर्वश्रेष्ठ ।

२. निरुपधि=उपाधिरहित, परिग्रहरहित, बाह्यसामग्री रहित, छलकपटरहित-सरल ।

३. सत्फल=सुन्दरफल, अच्छा फल, उत्तम फल, सच्चा फल ।

ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं,  
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मङ्गलम् ॥२०॥

भाषा देखो! वापस कवि हैं न, इसलिए १८७ गाथा और ३११ कलश। कलश अधिक हैं। समयसार में ४१५ गाथा और २७८ कलश हैं। इसमें ३११ कलश हैं। २०वें कलश का श्लोकार्थ, नीचे।

**मोह को निर्मूल करने से,...** अर्थात् क्या कहा? पुण्य और पाप के विकल्प जिसमें ज्ञात होते हैं, उसके वे नहीं हैं। जाननेवाले के वे पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, वाणी नहीं है। वे मेरे हैं, ऐसा माना था। वे मेरे नहीं हैं। ऐसे मिथ्यात्व का नाश करके **मोह को निर्मूल करने से,...** समझ में आया? पहले मिथ्यात्व की बात ली है। भगवान आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द है। उसे छोड़कर जो कुछ उसमें नहीं था, पुण्य-पाप विकल्प, दया, दान, व्रत आदि, राग आदि, शरीर आदि; उन्हें अपना माना था। उस मोह का नाश करके, निर्मोह करके। मुझमें वह राग और विकल्प तथा शरीर नहीं है; मुझमें तो आनन्द और ज्ञान है। उसे जाननेवाला ज्ञान वह मेरा है। वह वस्तु मेरी नहीं है। इस प्रकार मिथ्यात्व का नाश करके... समझ में आया? लो, यह मिथ्यात्व के नाश का उपाय।

अपना—स्वरूप का रूप ज्ञान और आनन्द है। उसमें परवस्तु मेरी, विकल्प आदि (मेरे हैं, ऐसा) माना था, वह मिथ्यात्वभाव था। मुझमें वे नहीं हैं; मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसे भान द्वारा मोह को निर्मूल करके, मोह का मूल निकालकर। मिथ्यात्व का एक अंश भी छोड़कर, (ऐसा कहते हैं)। भाई! गजब बात! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से,...** अब राग-द्वेष के नाश की बात करते हैं। पश्चात् जो शुभ-अशुभ विकल्प उठे। प्रशस्त अर्थात् शुभ, अप्रशस्त अर्थात् अशुभ। **समस्त राग का विलय...** (अर्थात्) नाश। मुझमें वह राग नहीं है, ऐसा तो पहले निर्णय किया था; पश्चात् अस्थिरता का राग रहता है, उसका भी स्वभाव में एकाग्र होकर नाश करने से। समझ में आया?

**द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से,...** राग और द्वेष दो का नाश कहते हैं न? पहले समस्त राग का नाश किया। विकल्पमात्र मैं नहीं हूँ, ऐसा अनुभव निर्णय किया, परन्तु फिर स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। चारित्र इसका नाम है। चारित्र यह वस्त्र बदले, स्त्री, पुत्री छोड़कर घर में वस्त्र बदले, इसलिए चारित्र, ऐसा चारित्र नहीं है।



पहले स्वरूप ज्ञान और आनन्द से भरपूर मैं (हूँ), पुण्य-पाप के राग से रहित (हूँ)। शरीर, वाणी, मन से रिक्त, उनके सम्बन्धी का ज्ञान और मेरा ज्ञान, उससे भरा हुआ मैं हूँ। ऐसी आत्मा की अनुभव की दृष्टि हो, तब उसने मिथ्यात्व का नाश किया कहा जाता है। तत्पश्चात् चारित्र आता है। वह चारित्र अर्थात् क्या? राग का नाश करना, द्वेष को फोड़ डालना, तोड़ डालना और स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। समझ में आया? लो, प्रकाशदासजी! यह चारित्र। किस प्रकार का चारित्र? आहा..हा..!

सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों की व्याख्या की है। मिथ्यात्व और अचारित्र का नाश तथा सम्यक्त्व और चारित्र की उत्पत्ति। समझ में आया? जीव अधिकार है न? ऊपर क्या अधिकार है? जीव। तो जीव का अधिकार जीव के स्वभाव में है। उसका अधिकार पुण्य-पाप, राग आदि शरीर में उसका अधिकार नहीं है। है? आहा..हा..! कहते हैं कि अपना स्वभाव... यह ऊपर तो बात कर गये हैं, निराकुल ज्ञानमात्र से भरपूर पदार्थ, जिसके आनन्द के लिये बाहर खोजना नहीं पड़ता, ऐसे आनन्द से भरपूर है। उसकी दृष्टि करके, उसमें सावधान होकर; पर में सावधानी का जो मिथ्यात्वभाव था, उसका नाश करे। आहा..हा..! कहो, समझ में आया यह? यह किसी बाह्यक्रिया से नाश हो, ऐसा कुछ नहीं है। आहा..हा..!

**प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से,...** जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि की विकल्प वृत्ति उठती है, वह भी राग है। उससे हटकर अन्दर स्वरूप में स्थिर होने पर, आनन्द में रमने पर राग का नाश हो, उसे चारित्र कहते हैं। भाई! गजब (बात है)! सुना नहीं होगा। यह तो स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़ा और बैठा। (केश) लोंच करे, गर्म पानी पीवे, यह छोड़ा। धूल में भी छोड़ा नहीं। सुन न! छोड़ा है धर्म।

यहाँ कहते हैं कि इस प्रकार आत्मा स्वभाव का भरपूर भगवान। सामने लिया न? **द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का...** मन का स्कन्ध है, वहाँ आगे द्वेष होता है। प्रतिकूल चीज़ देखकर द्वेष, अनुकूल होकर राग, मन का घड़ा फोड़! आहा..हा..! और आत्मा चैतन्यमूर्ति है, उसे जागृत कर, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! गजब बात, भाई! समझ में आया? पवित्र भगवान आत्मा... परन्तु वह आत्मा ऐसा है, यह सुना न हो। सुने बिना इसे जँचे किस प्रकार?

भगवान आत्मा जहाँ राग-द्वेषरहित है, ऐसा अनुभव हुआ। पश्चात् राग-द्वेष का

अभाव करने को स्वरूप में स्थिरता की, तब राग-द्वेष का अभाव हुआ। तब उस स्वरूप में आनन्द की लहर जगे, उसे चारित्र कहा जाता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लहर, उफान आवे। आहा..हा..! समझ में आया ?

ऐसा पवित्र भगवान आत्मा। निरुपधि... जिसमें उपधि नहीं। *उपाधिरहित, परिग्रहरहित, बाह्यसामग्री रहित, छलकपटरहित-सरल।* नित्य-उदित ( सदा प्रकाशमान ), ऐसी ज्ञानज्योति... नित्य, सदा ज्ञानज्योति उदित अन्दर प्रगट ही है। उसकी अन्तर में दृष्टि देने से और स्थिर होने से नित्य ज्ञानज्योति प्रगट होती है। वह पर्याय में प्रगट होती है। आहा..हा..! एकरूप सामान्य ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, नित्यभाव है; उसमें एकाग्र होने से विशेष भाव, चारित्रभाव, सम्यग्दर्शनभाव, ऐसा नित्य उदित ज्ञान में आता है। पर्याय में आता है, ऐसा कहते हैं। जैसा नित्य भगवान अन्दर है, ( सदा प्रकाशमान ), ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है। वापस पर्याय में नित्य उदित रहती है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का भाव प्रगट हुआ। वह प्रगटा, सो प्रगटा।

अहो! भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;... देखो! यह निर्मल वीतरागी पर्याय। भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल, वंद्य है;... *सुन्दरफल, अच्छा फल, उत्तम फल, सच्चा फल।* यह क्या कहा? भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल,... संयोग से भिन्न, राग से भिन्न, विकल्प से भिन्न, पर्याय के एक अंश जितना नहीं, ऐसा त्रिकाल। ऐसा पर से भिन्न करके अपने स्वभाव में भेदज्ञान करके स्थिर होता है, उसका फल—सत्फल वन्द्य है। सुन्दर फल वन्दन के योग्य है। लो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्विकारी दशा वन्द्य है। वह वन्दनीय है, आदरणीय है, वेदन करनेयोग्य वह है। आहा..हा..! समझ में आया ?

जगत को मंगलरूप है। आहा..हा..! लो, यह जीव ने मांगलिक किया। आत्मा नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख की एकाग्रता से और पर से भिन्न पड़कर जिसने वीतरागी समकित, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र - स्थिरता प्रगट की, वह जगत में मांगलिक है। मांगलिक हुआ उसके घर में अब। आहा..हा..! मंगल के वांदित्र बजे। समझ में आया ? पाँच-पच्चीस हजार, लाख-दो लाख मिले तो ( कहता है ) आज लापसी बनाना। आज दोपहर को शेर बाजार में जाकर दो घण्टे में एक लाख कमाये हैं। ऐ! मर गया तुरन्त एक व्यक्ति। पोरबन्दरवाला कल्याणजीभाई था न ? कल्याणजी गोविन्दजी। यहाँ तो हमारे पास

बहुत दृष्टान्त होते हैं न! चातुर्मास में हम वहाँ थे पोरबन्दर। एक बजे गये। पहले बीस लाख थे। उसमें दस लाख गये थे। धन्धा किया। एक दिन में एक लाख। लाख जहाँ कमाये... हो गया... लक्ष्मीचन्द पिताम्बर थे। सब भाईबन्ध। ऐई! कलु! बस, कलु कहा वहाँ तो उड़ गया अन्दर से। कुछ नहीं होता। एक लाख कमाये थे।

**मुमुक्षु :** किसके लिये ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ममता के लिये। दस लाख तो थे। पहले बीस लाख थे। दस लाख गये होंगे। इस प्रकार से धन्धा करके वापस इकट्ठे किये। पर्यूषण तक रहे और फिर मुम्बई गये। आहा..हा..! उड़ गये। आहा..हा..! पंछी उड़कर कहाँ गया। यह मेला था इकट्ठा, छूट गया। परन्तु था कब उसके साथ? वह तो सब चीजों पर हैं। समझ में आया? आहा..हा..! जगत को यह मांगलिक है। वे तो पैसे इकट्ठे हों तो मांगलिक करो, ऐसा करो, वैसा करो - ऐसा करे लो। पाँच लाख की आमदनी हुई है। पचास लाख में दो लाख का खर्च और पाँच लाख यह और सात लाख का... ९५ लाख इकट्ठे हुए। अंक गिनकर अन्दर से प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। सब अमांगलिक है। पाप के पोटले फोड़े हैं, कहते हैं।

**मुमुक्षु :** भले यह तो अमांगलिक, परन्तु चक्रवर्ती की अपेक्षा तो कम पैसे हैं न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ममता में कम कहाँ है इसे? ममता में तो इसे सब चाहिए है। आहा..हा..! एक बार नहीं कहा था? जिसे अन्याय से एक पैसा भी लेने का भाव है, उसे पुण्य के कारण से पूरा जगत मिले तो उसे निगल जाने का भाव है। वक्ररूप से अन्याय से... समझ में आया? एक पैसा भी लेने का जिसको अनीति का भाव है, उसे यदि बाह्य से पुण्य के कारण पूरा जगत मिल जाये, (तो ले लेवे) इतनी ममता उसके अन्दर है। ऐ.. पोपटभाई! आहा..हा..! तृष्णा का गड्ढा बड़ा है। भगवान में आनन्द की खान भगवान। आहा..हा..! उस आनन्द के सन्मुख देखे बिना, उसकी आस्था और श्रद्धा बिना जगत के पदार्थ मिलें तो ठीक, ये तृष्णा के बीज बोकर, फले फल, कहते हैं। यह भी फल फला है। मांगलिक फल यह फला है। उसको। अमांगलिक फल फला है। आहा..हा..!

**जगत को मंगलरूप है।** आहा..हा..! वाह! जगत में मंगलं बना है। मंग अर्थात् पवित्रता की, ल अर्थात् प्राप्ति। अथवा मं पाप का गल अर्थात् गालना। मंगलं - मंग अर्थात् मिथ्यात्वरूपी पाप। विकल्प से लेकर दूसरी चीजें मेरी हैं, ऐसा मिथ्यात्व, उसे मं—पाप।

कहा जाता है। उसे ग अर्थात् गाले-नाश करे, उसे मांगलिक कहा जाता है। समझ में आया ? यह तुम्हारी दुकान में शब्द सुने भी नहीं होंगे। सभी भाई इकट्ठे होकर यह बात करो तो यह बात बैठे ? वह तुम्हारा एक थोड़ा जगा है। छोटा है, इसलिए उसका बहुत नहीं सुनते। वहाँ दुकान में... नवलचन्दभाई ! नहीं ? आहा..हा.. ! कहते हैं कि, आहा..हा.. ! क्या बात की ? देखो ! क्या कहते हैं ? कि जिसने रागादि से भेद करके स्वभाव के भान में आया, उस वृक्ष के फल वन्द्य हैं, मांगलिक हैं। और जिसने भगवान आत्मा के आनन्द से हटकर, दूसरी चीज़ मेरी है, ऐसे मानने का जो वृक्ष रोपा, उसके फल अमांगलिक हैं। (उसके फल में) बड़ी पाप की दुर्गति होगी। पोपटभाई ! आहा..हा.. ! रुपये भी साथ में नहीं आयेंगे, हों ! आयेंगे ?

**मुमुक्षु :** जो मिले वह भोगना तो चाहिए न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसे भोगना, कहा ? भोगने का वह पाप है। जैसे भोगे जाते हैं ? यह प्रश्न हमारे यहाँ (संवत्) १९८३ के वर्ष में हुआ था। वह चारित्रविजय है न ? नहीं वह ? आश्रम है न दूसरा, यहाँ से १९८३ के साल में यहाँ वलाका अपना उतारा है न ? लाठी। वलाका उतारा। वह वृक्ष है वहाँ। हम वहाँ उतरे थे। भावनगर जाना था। १९८३ के वर्ष की बात है। १७ और २७, ४४ वर्ष हुए। फिर हम भावनगर गये। यहाँ चारित्रविजय थे न ? वे कहें, अरे ! कानजीस्वामी यहाँ निकले और मेरे पास नहीं आये। हम वृद्ध हुए, इसलिए फिर उन्होंने कहलवाया तो लाओ वहाँ जायें। गये थे। फिर उन्होंने ये प्रश्न रखा था। उन्हें ऐसा कि यह तो महाराज हैं और... सब भोगते हैं, इसलिए यह हमें पापी ठहरायेंगे। महाराज ! इस पुण्य का फल तो किसे कहना ? कहा, पुण्य का फल उसे कहना कि वस्तु की सामग्री मिले उतना। तो भोगे वह ? भोगे वह नया पाप। संवत् १९८३ की बात है। १९८३ की बात है। यहाँ सोनगढ़ में चारित्रविजय थे।

**मुमुक्षु :** वक्ता थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वक्ता-कर्ता चाहे जो थे। यह अभी दूसरा विषय चलता है। विषय दूसरा चलता है, उसमें वक्ता डाला। कहो, समझ में आया ? उसे ऐसा कहा था, और कहना था यह कि ये सब अभी पूर्व के पुण्य हैं और ये सब खाते हैं। देखो ! साधु होकर भी ऐसा करके बैठे। तुम्हें ऐसा लगे कि यह हम पूर्व का पुण्य खाते हैं। मैंने कहा, पुण्य

की व्याख्या क्या ? पूर्व का पुण्य फला, उसकी व्याख्या इतनी कि सामग्री मिले इतनी, परन्तु उसे भोगने का भाव वह नया पाप है।

**मुमुक्षु :** व्यर्थ गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यर्थ क्या ? वह था कब वहाँ ? ४४ वर्ष पहले यह बड़ा प्रश्न हुआ था, भाई ! नवलचन्द्रभाई ! ४४ वर्ष पहले। इस सोनगढ़ में ही यह वह। तब तो वह थे ही कहाँ ? तब तो यहाँ रहना है, ऐसा कहाँ था ? १९८३ की बात है। समझ में आया ? पूर्व के पुण्य की व्याख्या इतनी कि पूर्व का सत्ता में पड़ा हो, कोई शुभभाव किया हो। एकेन्द्रिय में शुभभाव होता है। इस हरितकाय में भगवान तो इस हरितकाय में है न, (उसे) शुभभाव होता है। वहाँ से निकलकर बड़ा करोड़पति राजा हो, परन्तु उस शुभभाव का फल सामग्री। उस सामग्री को भोगने की वृत्ति हो, वह पाप। आहा..हा.. !

**मुमुक्षु :** पुण्य-पाप...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्य-पाप का अन्तर नहीं, बापू ! नहीं। वह तो सामग्री मिली इतनी ही बात, बस। अब नये शुभभाव करे तो पुण्य और भोगने का भाव, वह पाप है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ४४ वर्ष हुए। १९८३। लो, यह भोगना या नहीं ? उसने ऐसा नहीं कहा था। उसे ऐसा कि ये महाराज हैं। ऐसे तो बहुत वे थे, मैं गया तो खड़े हो गये। आओ.. आओ.. महाराज ! खड़े हो गये। बाहर में बहुत वे थे। सत् राजकीय। फिर ऐसे प्रश्न करते-करते यह रखा। समकिति को भी पुण्य कहा है। सातावेदनीय को, रति को पुण्य कहा है। पुण्य का अर्थ क्या ? वह पुण्य नहीं है। यह बात ४४ वर्ष पहले हो गयी। श्वेताम्बर के तत्त्वार्थसूत्र में इन हास्य, रति, समकित मोहनीय को पुण्य में डाला है। तत्त्वार्थसूत्र में बदल डाला। तब १९८३ में यह बात हुई कि इसमें पुण्य कहा है न ? बिल्कुल नहीं। ऐ.. चेतनजी ! बिल्कुल नहीं। समकित मोहनीय को श्वेताम्बरों ने बदल डाला। पाप है, उसे पुण्य में डाला है। बिल्कुल नहीं। तब ४४ वर्ष पहले यह बात हुई थी। यह नहीं, कहा और पुण्य की मर्यादा इतनी कि पूर्व में शुभभाव हुआ हो तो पुण्य बँधे और बँधने का फल संयोग आवे इतना। अब उन संयोग पर यदि लक्ष्य जाये, कमाने का भाव हो, वह नया पाप है। पुण्य का लोन जल गया और पाप का नया लोन (खड़ा किया)। ऐसी (बात) है, बापू ! भगवान के घर की बात तो ऐसी है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो वह वृक्ष आया न? भाई! जिस प्रकार का वृक्ष रोपा होगा, वह फल आयेगा। अनार का रोपा होगा तो अनार का फल आयेगा और अमरूद का फल (बीज) रोपा होगा तो अमरूद का फल आयेगा। इसी प्रकार जिसने तृष्णा के फल (बीज) रोपे होंगे, उसे मरते हुए तृष्णा के फल आयेंगे। यह करो.. यह करो.. लाओ यह.. यह करो.. जाये मरकर नीचे।

जिसने आत्मा के आनन्द के फल रोपे हैं, वृक्ष रोपे हैं, वृक्ष.. आहा..हा..! भेदज्ञानरूपी वृक्ष... ऐसा कहा, देखो! भेद करते.. करते.. करते.. एकाग्र आया है। उसका फल तो वन्द्य है, मांगलिक है। आहा..हा..! इसका योगफल तो शान्ति का और आनन्द का है, ऐसा कहते हैं और इस तृष्णा की पूरी दिन होली सुलगी हो, उसका फल तो मरते हुए पागल हो जायेगा, ऐसा उसका फल है। पोपटभाई! पागल-पागल। कहो, समझ में आया? लो, यह २०वाँ कलश कहा।

### श्लोक-२१

( मंदाक्रांता )

मोक्षे मोक्षे जयति सहज-ज्ञान-मानन्दतानं,  
निर्व्याबाधं स्फुटित-सहजावस्थ-मन्तर्मुखं च।  
लीनं स्वस्मिन्सहज-विलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,  
स्वस्य ज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिनित्याभिरामम् ॥२१॥

( वीरछन्द )

जो अन्तर्मुख अव्याबाधित, आनन्द में जिसका विस्तार।  
सहज दशा जिसकी विकसित है, अपने में है सहज विलास ॥  
लीन सदा चित् चमत्कार में, तमनाशक है ज्योति महान।  
जयवन्तो सम्पूर्ण मोक्ष में, सहज ज्ञान शाश्वत अभिराम ॥२१॥

**श्लोकार्थ :-** आनन्द में जिसका विस्तार है, जो अव्याबाध ( बाधारहित ) है,

जिसकी सहजदशा विकसित हो गयी है, जो अन्तर्मुख है, जो अपने में सहज विलसते ( खेलते; परिणामते ) चित्त्वमत्कारमात्र में लीन है, जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को ( अन्धकारदशा को; अज्ञानपरिणति को ) नष्ट किया है और नित्य अभिराम ( सदा सुन्दर ) है — ऐसा सहजज्ञान, सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है ॥२१॥

---

कलश -२१ पर प्रवचन

---

२१ (वाँ)

मोक्षे मोक्षे जयति सहज-ज्ञान-मानन्दतानं,  
निर्व्याबाधं स्फुटित-सहजावस्थ-मन्तर्मुखं च ।  
लीनं स्वस्मिन्सहज-विलसच्चित्त्वमत्कारमात्रे,  
स्वस्य ज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिनित्याभिरामम् ॥२१॥

‘आनन्दतानं’ अर्थात् ? आनन्दवाला ? विस्तार । आनन्द में जिसका विस्तार है,...  
‘आनन्दतानं’ फैलाव, विस्तार ।

श्लोकार्थ :- आनन्द में जिसका विस्तार है,... ऐसा आत्मा । यह आत्मा कैसा है भगवान ? कि जिसे राग और पर से भिन्न करके आत्मा की एकाग्रता सेवन की है । उस आनन्द में जिसका विस्तार है, जो अव्याबाध ( बाधारहित ) है,... जिसकी दशा-आनन्द की दशा, स्वभाव में सन्मुख होकर जो धर्म हुआ, वह कैसी दशा है ? आनन्द का फैलाव है, बाधारहित है । पहले अस्ति किया । उसे किसी प्रकार का विघ्न नहीं है । जिसकी सहजदशा विकसित हो गयी है,... दशा जिसकी अन्दर शक्ति में थी । जैसे कली खिले वैसे आनन्द का नाथ अन्दर था, वह खिल उठा । जिसकी दशा में खिल गया है ।

जो अन्तर्मुख है,... यह पर्याय निर्मल है, वह अन्तर्मुख है । ध्रुव के अन्तर्मुख है । जो अपने में सहज विलसते ( खेलते; परिणामते ) चित्त्वमत्कारमात्र में लीन है,... आहा..हा.. ! धर्मात्मा का आनन्द का फल अथवा धर्मदशा वह आत्मा में लीनता है, वह धर्मदशा है । चित्त्वमत्कारमात्र में लीन है,... राग नहीं, पुण्य नहीं, कुछ हो, हो, उसके घर में । मेरे घर में तो आनन्द और ज्ञान है । उसमें जो लीन है । जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को



( अन्धकारदशा को; अज्ञानपरिणति को ) नष्ट किया है... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु को अन्तर अनुभव करके जिसने अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश किया है। जहाँ सूर्य हो वहाँ अन्धकार नहीं रहता। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द का भान होकर, स्वरूप के अनुभव की दशा होकर जिसने अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर किया है। गजब बात, भाई! समझ में आया ?

और नित्य अभिराम ( सदा सुन्दर ) है... प्रगट हुआ ज्ञान, हों! ऐसा सहजज्ञान, सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है। आहा..हा..! जिसने आत्मा के स्वभाव को पर से भिन्न करके भेदज्ञान करके स्थिर हुआ है, अन्तर्मुख दशा जिसकी हुई है, उसे ऐसी सहज ज्ञानदशा सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तती है। वह अन्तर्मुख से हुआ अन्तर्मुख पर्याय का अन्तर्मुखपना है। केवलज्ञान बहिर्मुखपना नहीं। आहा..हा..! गजब काम भाई!

मुमुक्षु : .....सुखी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अच्छी गाड़ी, लाड़ी, घोड़ी, बाड़ी हो तो सुखी हो ( ऐसा मानता है )। यह तो सब होली है। यह तो अन्दर आत्मा में आनन्द है। चैतन्य का लाल आनन्द का है। आहा..हा..! जैसे चौसठ पहरी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है, वह बाहर आती है, वैसे आत्मा में आनन्द पड़ा है। उसकी एकाग्रता से उसे आनन्द बाहर आता है। वह उसका आनन्द है। धूल का आनन्द कब था ? मूढ़ ने बाहर से माना है। यह पैसा, स्त्री, इज्जत, कीर्ति, मकान... चारों ओर सब होली सुलगती है। आहा..हा..!

आनन्द तो आत्मा का स्वरूप है। वस्तु जो हो, वह दुःखरूप नहीं हो सकती। उसका स्वभाव दुःखरूप नहीं होता। उसके संयोग में वह चीज़ नहीं होती। वह अपने स्वभाव में होता है। स्वयं भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का स्वभाव है, उसमें से आनन्द आता है। सिद्ध भगवान आनन्द को भोगते हैं। आनन्द को भोगते हैं। वजुभाई! इनका बारह वर्ष का लड़का दिलीप है न? जयन्तीभाई का। उसके पिता जयन्ती ने पूछा था उससे, दिलीप! यह महाराज कहते हैं कि साधु जंगल में रहते हैं। लालचन्दभाई! पहिचानते हो न यह जाधवजीभाई? तुम्हारे कलकत्ता। जयन्तीभाई हैं न बड़े? लड़का ऐसा पका है। घर जाकर उसका पिता पूछे, ऐ दिलीप! यह महाराज कहते हैं कि साधु ऐसे होते हैं कि जंगल में रहें, उन्हें साधु कहते हैं। जंगल में उन्हें कैसे सुहाता होगा? ऐ..! पप्पा! ऐसा करके कहा, हों! वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में लहर करते हैं। कैसे सुहाता होगा, यह तुम क्या कहते हो?



जयन्तीभाई को ऐसा जवाब दिया था। अतीन्द्रिय आनन्द में। अकेले कैसे सुहाता होगा ? वे आनन्द में रहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में। फिर दूसरा जवाब दिया, तदुपरान्त दलील दी। पप्पा! सिद्ध अकेले रहते हैं या नहीं? सिद्ध-सिद्ध। णमो सिद्धाणं। उन्हें अकेले नहीं सुहाता होगा उन्हें? पप्पा! अतीन्द्रिय आनन्द में लहर करते हैं। तुम्हारे यह... क्या कहलाता है? यह तुम्हें घोंघाट सुहाता है। तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए। बोले तो उसके बाप के सामने धड़ाका ले। ठीक बेटा! तुम्हें घोंघाट सुहाता है। यह करना, यह करना। इसलिए घोंघाटरहित चीज़, तुम्हें निवृत्ति चाहिए नहीं। सिद्ध निवृत्ति लेकर बैठे हैं और मात्र आनन्द में हैं। तुम्हें घोंघाट में दिखते हैं और घोंघाटरहित चीज़ आनन्दवाली कैसी होती है? ऐई! लालचन्दभाई! अभी बारह वर्ष का हुआ है, हों! तेरहवाँ वर्ष चलता है। कलकत्ता में है। छुट्टी पड़ती है न? क्या कहलाता है? वेकेशन पड़े तब यहाँ आता है। पिता को जवाब दिया। यह नहीं सुहाता होगा सिद्ध को? सिद्ध हैं या नहीं? अकेले वहाँ नहीं रुचता होगा? वे अतीन्द्रिय आनन्द में मजा करते हैं। तुमको घोंघाट चाहिए है। यह करना और वह करना, इसके बिना तुम्हें चैन नहीं आता। ठीक भाई! सच्चा हो तो लड़का कहे तो भी आपत्ति नहीं। उसमें क्या है? क्यों शान्तिभाई! वह तो लड़का है, हमें समझावे तो हम उसके पास समझें। आहा..हा..!

**और नित्य अभिराम ( सदा सुन्दर ) है—**ऐसा सहजज्ञान,... जैसा शक्ति में आनन्द और ज्ञान था। जैसे पीपर में चौंसठ पहरा चरपरा रस और हरा रंग था, वह बाहर आया है; उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का सम्पूर्ण.. सम्पूर्ण.. सम्पूर्ण.. सत्व, तत्त्व था, वह एकाग्रता द्वारा बाहर आया है। आहा..हा..! अरे! विश्वास तो लावे, उसे खबर नहीं होती। ऐसा भगवान चिदानन्द प्रभु है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? यह तो बाहर से धर्म मानकर बैठे हों—यह किया और वह किया, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण (करे)। भानरहित को सामायिक कैसी तुझे? प्रौषध, प्रतिक्रमण वह तो सब एक रहित शून्य हैं। रण में शोर मचाने जैसा है। शोर कोई सुने, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव कहते हैं, अहो! ऐसा भगवान! यह सहजज्ञान की पर्याय की व्याख्या होती है। **सम्पूर्ण मोक्ष में जयवन्त वर्तता है।** वस्तु के स्वभाव में जयवन्त सहजज्ञान-स्वाभाविक ज्ञान तो है, परन्तु उसका अनुभव होने पर पर्याय प्रगट हुई, वह भी सहजज्ञान मोक्ष में वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया?

## श्लोक-२२

( अनुष्टुप् )

सहज-ज्ञान-साम्राज्य-सर्वस्वं शुद्ध-चिन्मयम् ।  
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम् ॥२२॥

( वीरछन्द )

सहज ज्ञान साम्राज्य अहो, जिसका सर्वस्व शुद्ध चेतन ।  
निज आत्म को लखकर होता हूँ, मैं निर्विकल्प चिद्घन ॥२२॥

श्लोकार्थ :- सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है — ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर, मैं यह निर्विकल्प होऊँ ॥२२॥

कलश-२२ पर प्रवचन

२२, छोटा श्लोक है ।

सहज-ज्ञान-साम्राज्य-सर्वस्वं शुद्ध-चिन्मयम् ।  
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम् ॥२२॥

सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है... यह त्रिकाल की स्वाभाविक बात है । स्वाभाविक ज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है... आत्मा का राज्य आत्मा में है । देखो ! साम्राज्य । समझ में आया ? यह साम्राज्य । कहा था न ? उन जामनगर के दरबार के पास गये थे न, एक बार ( संवत् ) २०१० के वर्ष में । यह क्या कहलाता है ? अभी गुजर गये न ? दिग्विजय, उन्होंने कहा, महाराज ! मुझे दर्शन करना है, मुझे ठीक नहीं है । दिग्विजय, एक करोड़ की आमदनी है । अभी गुजर गये । इनका लड़का । २०१० के वर्ष में गये थे । आहा..हा.. ! नौखा-नौखा.. उन्हें आँख का ऑपरेशन करवाना था । मुझे दर्शन करने हैं । मैं उनके बंगले के पास जंगल जाता था । पाँच मिनट के रास्ते में, इसलिए उन्हें खबर पड़ी की महाराज यहाँ आते हैं । उनका मूल व्यक्ति अपना स्थानकवासी जैन था ।

महाराज यहाँ आते हैं, इसलिए हमारे दर्शन करना हो तो, महाराज को प्रार्थना करो। फिर गये थे। पन्द्रह मिनट बैठे। गुलाबरानी उनकी बहू थी। तुम्हारे एक करोड़ की आमदनी का यह साम्राज्य नहीं, कहा। यह तो धूल का राज है। साम्राज्य तो आत्मा में ज्ञान और आनन्द का अनन्त गुण का राज, वह साम्राज्य है। फिर रानी बोली—हाँ, महाराज! यह बात सत्य है। (रानी) होशियार है। पाव घण्टे गये थे। सबेरे दिशा को गये थे, समय नहीं था। पाव घण्टे (गये थे)। एक हजार रुपये रखे। एक हजार देते हैं। पाव घण्टा हुआ, उसके बदले में। जल्दी सबेरे दिशा जाकर। एक हजार गिने थे। अपने मोक्षशास्त्र में डाले थे। यह नहीं... यह नहीं... भाई! यह धूल का ढेर वह राज नहीं है।

आत्मा का सहजज्ञानरूपी साम्राज्य... देखो! आहा..हा..! अनन्त-अनन्त बेहद जिसका ज्ञानस्वभाव स्वाभाविक, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का राज। वह सर्वस्व आत्मा का स्वरूप-राज्य है। उससे वह शोभता है। ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,... देखो, ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,... ऐसा आत्मा हूँ, ऐसा जानकर। ज्ञान से ऐसा भरचक लबालब भरा हुआ। जैसे समुद्र उछलता है, वैसे आत्मा ज्ञान और आनन्द से छलाछल भरा हुआ है। नजर डाले बिना वह नजर में पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया? खबर नहीं होती। अन्ध की तरह अनादि से चला जाता है। पोपटभाई! घर में भगवान विराजे उसके सामने नहीं देखना और पर के सामने देखना, लो!

भरे-पूरे घर में खाता नहीं और जूठन चाटने जाता है, ऐसा नहीं कहते? उसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तीन लोक का नाथ आनन्द का धाम तू यहाँ अन्दर है न! किसी का चाटने जाता है, भोग का, विषय का, इज्जत और कीर्ति का, विकल्प का जूठन चाटता है तू। तुझे शर्म नहीं आती! पिता ऐसा कहता है न कि कुछ बदचलन हो तो। घर में स्त्री खानदानी लड़की है और तू उस गन्दी स्त्री को लेकर बैठा, तुझे शर्म नहीं आती? स्त्री खानदान की, बाहर निकले तो मुँह ऊँचा करे नहीं, ऐसी है, उसे छोड़कर भरे पूरे (को छोड़कर) यह अन्यत्र जहाँ-तहाँ भटकता है, ऐसा पिता उसे कहता है।

इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तेरा साम्राज्य अन्दर है न, भगवान! इस दूसरे का राज्य करने कहाँ चला तू? पुण्य तेरा, शरीर मेरा, वाणी मेरी, राज्य मेरा, धूल मेरी—जूठन चाटने जाता है? समझ में आया? निर्लज्ज हो गया है न, उसे चाबुक लगते नहीं, जेठाभाई! आहा..हा..!

कहते हैं, अरे! हमारा सर्वस्व राज तो चैतन्य आनन्द है। ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को... देखो! ऐसा चैतन्य, ऐसा। रागवाला, कर्मवाला, शरीरवाला नहीं। ऐसा शुद्धचैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर,... पहले जानकर, ऐसा कहा है न? मैं यह निर्विकल्प होऊँ। यह वस्तु ज्ञानमय है, आनन्दमय है, ऐसे उसका ज्ञान करके, अब मैं स्थिर होता हूँ। विकल्परहित होकर निर्विकल्प होता हूँ। इसका नाम धर्म है। कहो, समझ में आया? बात तो बड़ी लगे। ऐई! भीखाभाई! बात तो तेरे घर की बड़े में बड़ी है। आहा..हा..! क्या करे? रंक होकर चार गति में भटकता है। यह कलश कहा, लो, २२ हुए न? अब गाथा। ११-१२ गाथा के कलश।

इस ज्ञानोपयोग की व्याख्या में यह सब आया है। आहा..हा..! ज्ञान के बहुत भेद आये थे न? अब इस दर्शन के भेद लेते हैं। अन्तर सहजानन्द, सहजज्ञान त्रिकाल है, उसे कारणज्ञान कहा था। केवलज्ञान को कार्यस्वभावज्ञान कहा था। चार ज्ञान को विभाव ज्ञान कहा था। केवलज्ञान के तो प्रकार करेंगे। केवलज्ञान मोक्षदशा में जो वर्ते, अन्तिम कहा वह। वह केवलज्ञान स्वाभाविक ज्ञान है, ऐसा कहा। इसमें भाव में उसे विभावभाव वाला कहेंगे।

**मुमुक्षु :** अधूरा ज्ञान है इसलिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं... नहीं... अधूरा कहाँ है? पर्याय है इसलिए। केवलज्ञान, वह कार्यस्वभावज्ञान है। अरे! यह भाषा किस प्रकार की! और त्रिकाली ज्ञान, वह कारणस्वभावज्ञान है। अब कार्यस्वभावज्ञान को तीन प्रकार से बतलायेंगे, उसे विभाव कहेंगे। केवलज्ञान को विभावज्ञान कहेंगे। त्रिकाली परमस्वभावज्ञान की अपेक्षा से (ऐसा कहेंगे) और उसे कार्यपर्यायज्ञान कहेंगे। भाई! कार्यपर्यायज्ञान। स्वभावकार्यपर्यायज्ञान। पर्याय को? समझ में आया? आहा..हा..! कितना याद रखना इसमें? इसमें इनकार नहीं करना। यह केवलज्ञान की व्याख्या इस प्रकार कही। अथवा ज्ञानभाव की। अब दर्शनभाव की व्याख्या उपयोग की (व्याख्या) करेंगे। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)